वहाबी मत का सत्य

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : (10)

इसलिए इब्ने अब्दुल वहाब की किताब अत्तौहीद के व्याख्या कार ने इसे लिखने के बाद लिख दिया है किः

"यह इसका सबूत है कि जो इस बारे में वर हुए वह काफ़िर थे। इसलिए कि अगर वो मोमिन होते तो ये फैसला न करते कि अच्छे काम करने वाले व्यक्तियों की क़ब्रों पर मस्जिद बनाए जबकि हमारे पैग़म्बर ने ऐसा करने वालों पर लानत की है।"

अर्थात् उन्होंने अपने धर्म को सही बनाने के लिए कुरआन को अपने आधीन बनाना चाहा है। इसलिए हजारों मुसलमानों पर कुफ़्र के फ़त्वे की बाढ़ इतनी बढ़ी कि पहले काल के सच्चे मुसलमानों पर भी कुफ़्र के फ़त्वे लगाने लगे। पहले तो ये कि अगर पूरी आयत को पढ़ें तो पता लगेगा कि इमारत बनाने पर दोनों गिरोह एक राय थे। झगड़ा इस पर था कि किस प्रकार की हो? अगर मान लिया जाए कि वर होने वाले काफ़िर हों तो भी कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा फिर ये कि मुफ़स्सिरों (कुरआन के व्याख्या कारों) का कहना है कि वर होने वाले लोग मोमिन थे। तभी तो मआलिम अततनज़ीले बग़वी में है किः

"मुसलमानों ने कहा कि हम इन पर मस्जिद का निर्माण करेंगे जिसमें संसारों के पालन हार के लिए नमाज़ें पढ़ें।"

ख़ाज़िन ने 'लुबाबुत्तावील' में लिखा है

"इब्ने अब्बास ने इस इमारत के बारे में कहा कि मुसलमानों ने कहा हम उन पर मस्जिद बनाऐंगे जिसमें लोग नमाज़ें पढ़ें इसलिए कि ये हमारे धर्म पर थे।"

इस प्रकार के शब्द 'तफ़सीरे जलालैन' और कश्शाफ़ और तफ़सीरे 'अबूस्सऊद' में हैं और इब्ने अब्बास में है किः

"जो वर हुए वह मोमिन थे उन्होंने कहा हम मस्जिद का निर्माण करेंगे कि ये हमारे धर्म पर थे।"

और नीशापूरी ने ग़राएबुल कुरआन में लिखा है कि

"जो वर हुए वह मुसलमान समूह था और उनका राजा मुसलमान था। इसलिए उन्होंने वहाँ मस्जिद बनाई जिसमें मुसलमान नमाज़ पढ़ें और उनके उस ठहरने के स्थान से बरकत (समृद्धि) पाएं और उनको ही अधिक अधिकार था उन क़ब्रों की देखरेख के लिए इमारत बनाने का।"

इस सब के बाद क्या उस व्यक्ति का ये कहना सही हो सकता है कि वह वर होने वाले माज़ अल्लाह (खुदा की शरण) काफ़िर थे जबकि इतने बड़े मुफ़स्सिरों (कुरान के व्याख्याकारों) जिनमें तरजुमानुल कुरआन (कुरान प्रवक्ता) अब्दुल्लाह बिन अब्बास भी हैं उन्हें इसलाम वालों में से और ईमान वालों में से बता रहे हैं।

इसके बाद आइए सुन्नत पर भी नज़र डालते हैं। पता होना चाहिए कि हमारी बातचीत यहाँ उस गिरोह के सामने है जिनके यहाँ सुन्नत के मानक में एक तो वह चीज़ है जो उनके यहाँ और हमारे यहाँ एक है। अर्थात् हज़रत[स] का कहना, करना और मानना सम्मिलित है और एक बात हमसे अलग हैं अर्थात् वह रसूल[स] के सहाबा का अनुसरण भी ज़रूरी समझते हैं और इस हदीस को मानते हैं कि मेरे सहाबी सितारों की तरह हैं जिस किसी के पीछे चलोगे सही रास्ता पाओगे

तो हमें ज़रूरी है कि क़ब्रों के निर्माण के बारे में पहले रसूल[स] की सुन्नत को दिखाएं फिर सहाबा व ताबाईन के चलन कि ये सब सबूत के लिए काफ़ी हैं।

1 उस्मान बिन मज़ऊन की कब्र के लिए रसूल अल्लाह[स] का कार्य

नूरूद्दीन समहूदी ने 'वफ़ाउलवफ़ा' में लिखा है कि:

"मुहम्मद बिन कुद्दामा की रिवायत है उनके पिता के द्वारा उनके दादा से कि जब हज़रत[स] ने उस्मान बिन मज़ऊन को दफ़्न किया तो आदेश दिया कि उनकी क़ब्र के सरहाने एक पत्थर रख दिया जाए। कुद्दामा का कहना है कि जब बहुत समय के बाद हम बक़ीअ गए तो उस पत्थर को देखा और समझे कि ये उस्मान बिन मज़ऊन की क़ब्र है।"

दूसरी रिवायत है कि

"हज़रत[स] ने कहा कि पत्थर मैंने इसलिए रखवाया कि मेरे भाई की क़ब्र का उससे पता चले और उसके पास अपने रिश्तेदारों में जिसका देहान्त हो उसे मैं दफ़्न करूँ।"

और साफ है कि किसी हुक्त आदेश या काम के साथ जब कारण बताया जाए तो वह कारण जिस रूप में अधिक मिले वह आदेश वहाँ अधिक ज़ोर से लागू होगी। हज़रत[स] ने पत्थर रखने का कारण कब्र की पहचान बताया जिससे उसके पास दूसरी क़ब्र बनाई जा सके और ज़रीह या कुब्बा बनाने का मक़सद भी यही होता है जो इससे कहीं ज़्यादा तो अच्छी तरह पूरा होता है तो हज़रत[स] का कर्म उसके अच्छे होने के सबूत के लिए काफ़ी है।

हर व्यक्ति समझ सकता है कि हज़रत[स] के सामने बहुत से सहाबियों की इन्तेकाल हुआ मगर किसी के लिए हज़रत[स] ने ऐसे कुछ नहीं किया। इससे साबित होता है कि सब दफ़्न होने वाले एक से नहीं होते और उसी तरह सबकी क़ब्रें एक सी नहीं होना चाहिए बल्कि कुछ दूसरों से अलग होते हैं चाहे ईमान में पहल की वजह से या धार्मिक सम्मान की वजह से और वह इस्लाम के प्रारम्भ का समय बहुत निर्धनता का था। अतः जो साधारण जीवन स्तर हज़रत[स] और फिर दूसरे मुसलमानों का था उसे देखते हुए ज़रीह व कुब्बे आदि बनाना आसान न था। अतः उस समय के हिसाब से अलग दिखाने के लिए जो विशिष्ट प्रतीक हो सकता था उसका उस्मान बिन मज़ऊन के लिए हज़रत[स] ने इन्तेज़ाम किया और जब मुसलमानों का आम जीवन स्तर ऊँचा हो गया तो उसी लिहाज़ से नबियों और औलिया की क़ब्रों की विशिष्ट पहचान के तौर पर इमारतों में विकास होने लगा, जो होना चाहिए था और जितना स्थान जिसका ऊँचा हो उसी के हिसाब से उसमें बढ़ोत्री होना चाहिए।

2 रसूल[स0] के पुत्र इब्राहीम की क़ब्र पर इमारत

उसी किताब 'वफ़ाउलवफ़ा' में इब्ने ज़ुबाला की रिवायत है

"सअ़द बिन मुहम्मद से कि उन्होंने हज़रत[स] के पुत्र इब्राहीम की क़ब्र देखी 'ज़ौरा' के पास। अब्दुल अज़ीज़ बिन मुहम्मद ने कहा ये वह घर है जो बाद में ज़ैद बिन अली के स्वामित्व में आया।"

अगर इमारत का क़ब्र पर होना जायज़ न होता तो हज़रत[स] अपने पुत्र को घर के अन्दर क्यों दफ़्न करते और अगर हम ये मान भी लें कि क़ब्र घर के आंगन में थी तब भी दीवारे आंगन की तो क़ब्र के चारों ओर होंगी। वहाबी लोग इसे भी मना (निषिद्ध) समझते हैं।

3 हज़रत ख़ातूने जन्नत (स्वर्ग महिला जनाब सैय्यदा) की सीरत (चलन)

'वफ़ाउलवफ़ा' में इमाम मुहम्मद बाक़िर[अ] की रिवायत है कि:

"हज़रत[स] के दिल का टुकड़ा हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[अ] जनाबे हमज़ा (रजी0) की क़ब्र की ज़ियारत को जाती थीं और उसकी मरम्मत करती थीं और ठीक करती थीं और उन्होंने भी इसकी पहचान के लिए एक पत्थर रख दिया था।

पता होना चाहिए कि जनाब फ़ातिमा का यह काम अपने पिता के जीवन काल में था। और

हज़रत के ज्ञान में था। मगर हज़रत ने इससे नहीं रोका इसलिए यह रसूल[स0] के अनुमोदन में आकर सुन्नत हुआ। और यह बिल्कुल वहाबी विचार धारा के ख़िलाफ़ है। इसलिए कि वह महिलाओं के लिए क़ब्र की ज़ियारत को बिल्कुल हराम समझते हैं और फिर क़ब्र की पहचान को भी मना करते हैं। मगर जनाबे फ़ातिमा[स] जनाबे हमज़ा की क़ब्र की बराबर देखरेख करती रहीं अगर उसका बाक़ी रहना ज़रूरी न समझती तो समय–समय पर उसे ठीक क्यों करती और जब कब्र की देखरेख 'सही' है और अच्छा काम है तो फिर कुब्बे का निर्माण करना जो इस मक़सद को पूरा कर सकता है, क्यों ठीक न होगा।

4 हज़रत[स] की क़ब्र के लिए हज़रत अली[अ] और सब अहलेबैत व सहाबियों के चलन

हर व्यक्ति समझ सकता है कि अगर क़ब्र पर इमारत बनाना मना होता तो इससे कुछ असर नहीं पड़ता कि क़ब्र पहले से हो और बाद में उस पर इमारत बनाई जाए या इमारत पहले से हो कब्र बाद में बनाई जाए, क्योंकि काम दोनों का एक है और वो ये कि लोग ज़ियारत के लिए आएंगे और उस इमारत से उनके लिए सुविधा होगी। अब अगर ये काम ग़लत हो तों स्वंय हज़रत[स0] को आयशा के कक्ष में क्यों दफ़्न किया गया जिसके ऊपर छत थी। हज़रत अली[अ] ऐसा कार्य क्यों करते जबकि वहाबियों का कहना है कि हज़रत[स] ने उन्हें ही क़ब्रों की इमारतों को तोड़ने के लिए भेजा था। इससे पता चलता है कि अहलेबैत और सहाबी लोग सब एक मत थे कि क़ब्र पर इमारत होने से कोई नुकसान नहीं है।

5 समय–समय पर हज़रत[स0] के रौज़े के नव निर्माण और मज़बूती की कोशिश

वफ़ाअउलवफ़ा में समहूदी ने लिखा :

"हज़रत[स] के कक्ष की छत पहले खजूर के पेड़ की छाल की थी। सबसे पहले जिसने ईटों वाली छत बनवाई वह द्वितीय ख़लीफ़ा उमर बिन ख़त्ताब थे।"

इसके बाद जैसा नूववी ने सही मुस्लिम की व्याख्या में लिखा है

"जब मुसलमान बढ़े और सहाबियों व ताबिईन लोग को हज़रत[स] की मस्जिद को बढ़ाने की ज़रूरत पड़ी और यह विस्तार हज़रत[स] की पत्नियों के घरों तक पहुँच गया जिसमें आयशा का कक्ष भी था तो उन लोगों ने हज़रत[स] की क़ब्र के चारों ओर ऊँची दीवार बनवाई ताकि क़ब्र मस्जिद में इस प्रकार न लगे कि आम लोग उसकी ओर मुख करके नमाज़ पढ़ने लगें। फिर दो दीवारें कब्र पूर्वी कोनों से मिलाकर बनाई गई ताकि कोई क़ब्र की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ ही न सके।

इससे पता चला कि क़ब्र पर या उसके पास इमारत बनाने में कोई नुकसान नहीं है। बस क़ब्र की ओर मुख करके नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए।

इसके बाद लगातार हज़रत[स] के रौज़े के रखरखाव और नव निर्माण में खास इन्तेज़ाम होता रहा यहाँ तक कि बुख़ारी ने सही में रिवायत किया है हश्शाम बिन उरवा से और उन्होंने अपने पिता उरवा बिन जुबैर से कि

"जब वलीद बिन अब्दुल मलिक के हज के समय में हज़रत[स] के कक्ष की चार दीवारी गिर गई और उसका निर्माण शुरू हुआ तो एक पाँव बाहर निकल आया जिससे ये विचार करके कि ये हज़रत[स] का पवित्र पाँव न हो लोग घबरा गए और कोई ऐसा न मिला जो उसके बारे में अपने ज्ञान से बताए। बस उरवाह बिन जुबैर ने देख कर कहा अल्लाह की क़सम ये हज़रत[स] का पैर नहीं है। हो न हो ये उमर का पाँव है।"

और पता होना चाहिए कि वलीद की ख़िलाफ़त 86 हिजरी से लेकर 96 हि0 तक रही और इस समय तक सहाबियों में कुछ जीवित थे।

6 हज़रत[स] की पत्नी उम्मे हबीबा की क़ब्र पर इमारत

समहूदी ने लिखा है कि ज़ैद बिन साइब की रिवायत है अपने दादा से किः

"जब अक़ील बिन अबी तालिब (रजि0) ने अपने घर में एक कुँआ खुदवाया तो एक बेलबूटे वाला पत्थर निकला जिस पर लिखा था कि ये

हज़रत[स] की पत्नी उम्मे हबीबा बिन्ते सख़्र बिन हरब की क़ब्र है तो अक़ील ने कुंए को पटवा दिया और उस पर इमारत बनवाई। इब्ने साइब का कहना है कि मैं उस इमारत में गया तो मैंने वो क़ब्र स्वंय देखी।"

7 नबियों और सालेहीन की क़ब्रों पर इमारत ख़ासकर हज़रत इब्राहीम की क़ब्र पर इमारत

समकालीन अल्लामा सय्यद इब्राहीम रावी रिफ़ाई ने "अवराक़े–बग़दादिया" में लिखा है कि

"जब मुसलमानों ने शाम और बैतुल मक़दस को विजय किया तो वहाँ नबियों की क़ब्रों पर इमारतें बनी देखी। उन्होंने उन्हें नहीं तोड़ा और सबसे अधिक प्रसिद्ध कब्र हज़रत इब्राहीम[अ०] की क़ब्र है उसे द्वितीय ख़लीफा उमर बिन ख़त्ताब ने देखा और उसे तोड़ा नहीं। और शेख तक़ीउद्दीन इब्ने तैयमिया ने अपनी किताब "सिरातुमुस्तक़ीम" में इस इमारत के अस्तित्व के बारे में लिखा है। मगर कहा है कि 400 हिजरी तक उस इमारत का द्वार बन्द था।"

हम कहते हैं कि सहाबियों का जिनमें द्वितीय ख़लीफ़ा उमर भी थे उस इमारत को बाक़ी रखना इसका सबूत है कि क़ब्रों पर इमारत होने पर उनके निकट कोई ख़राबी नहीं थी और इब्ने तैमिया का ये कहना कि द्वार उसका 400 हिजरी तक बन्द था केवल एक दावा है जिसका कोई सबूत नहीं बल्कि इतिहास में इसके ख़िलाफ़ है। और पता चलता है कि चौथी शताब्दी के पहले भी लोग हज़रत इब्राहीम[अ] की ज़ियारत को जाते थे। अतः सय्यदा नफ़ीसा जिनकी मृत्यु दूसरी शताब्दी हिजरी में हुई वे हर नमाज़ के बाद दुआ करती थीं कि

"पालनेवाले! मुझे अपने खलील (दोस्त) इब्राहीम की ज़ियारत नसीब कर।"

इसे उस्मान बिन मद्दूख शाफ़ई ने अपनी किताब "अल–अदलुषाहिद फ़ी तहक़ीक़िल मुषाहिद" में लिखा है।

8. जनाबे फ़ातिमा बिन्ते असद की क़ब्र पर इमारत

पिछले सबूतों के बाद ही क़ब्रों की इमारतों के बारे में कोई शंका नहीं रहनी चाहिए जबकि हज़रत[स] के काय और अनुमोदन और फिर अहलेबैत और सहाबियों व ताबाईयों के चलन पैग़म्बर के समय और उससे मिली हुई शताब्दियों में लगातार चलता रहा और जो व्यक्ति अधिक खोज करे उसे और अधिक पता चलेगा कि पहली ही शताब्दी में कुब्बे का निर्माण होने लगा था। अतः समहूदी ने वफ़ाउलवफ़ा में लिखा है कि

"फातिमा बिन्ते असद (हज़रत अली[अ] की माँ) की कब्र के बारे में अब्दुल अज़ीज़ की रिवायत है जिसकी सनद (क्रम) मुहम्मद (हनफ़िया) बिन अली बिन अबी तालिब तक पहुँचती है कि जब फ़ातिमा बिन्ते असद की बीमारी में हालत खराब हुई। हज़रत[स] को इसका ज्ञान हुआ तो कहा जब इनतेक़ाल हो जाए तो मुझे बताना। अतः जब उनका इनतेक़ाल हो गया तो हज़रत[स] को अवगत कराया गया। आप सीधे आये और उनकी कब्र खोदने का आदेश दिया उस मस्जिद के अन्दर की भूमि पर जिसे अब 'फ़ातिमा की क़ब्र' कहा जाता है।

समहूदी कहते हैं कि ये कहना मुहम्मद हनफ़िया का कि

"उस मस्जिद के अन्दर के स्थान पर" बता रहा है कि उस समय उनकी क़ब्र पर मस्जिद थी जिसमें लोगों को क़ब्र का आम तौर पर ज्ञान था।'' मुहम्मद हनफ़िया का इनतेक़ाल 81 हिजरी में हुई। इसलिए जनाब मुहम्मद हनफ़िया की ये रिवायत बताती है कि पहली शताब्दी में जनाबे फ़ातिमा बिन्ते असद की क़ब्र पर मस्जिद का निर्माण हो गया था।

9. जनाबे हमज़ा[र०] की क़ब्र पर इमारत

'वफ़ाउलवफ़ा' में है कि

"अब्दुल अज़ीज़ ने कहा कि ज़्यादा गुमान हमारे यहाँ ये है कि मुसअब बिन उमैर और अब्दुल्लाह बिन जुहश दफ़्न हुए उस मस्जिद के नीचे जो हमज़ा[र०] की क़ब्र पर बनी हुई थी।"

और अब्दुल अज़ीज़ दूसरी शताब्दी के आदमी है जिसे समहूदी ने पहले लिखा है कि आगे वाले भाग में हमज़ा^रज़ि० की क़ब्र के बारे में अब्दुल अज़ीज़ बिन मरवान की ज़बानी आएगा कि पहले समय से हमज़ा^रज़ि० की क़ब्र पर मस्जिद थी और यह दूसरी शताब्दी का ज़िक्र है।

10. जनाबे अब्बास और इमाम हसन की क़ब्र का कुब्बा

अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने 'सवाएकुल मुहर्रिक़ा' में इमाम मुहम्मद बाक़िर के हाल में लिखा है कि:

"आपकी मृत्यु 117 हिजरी में 58 वर्ष की आयु में हुई अपने पिता की तरह ज़हर से। और आपकी माता उनके पिता के चचा इमाम हसन^अ० की बेटी थीं और आप माता पिता दोनों ओर से हज़रत^स० की सन्तान में हैं और आप भी अपने पिता के पास इमाम हसन^अ० और जनाबे अब्बास^अ० के कुब्बे में जो जन्नतुल बक़ीअ में था दफ़्न हुए।"

इससे पता चलता है कि अब्बास की क़ब्र पर कुब्बा 117 हिजरी में भी था और मोहद्दिस ख़्वाजा पारसा बुखारी ने अपनी किताब "फ़ज़्लुल ख़िताब" में इमाम ज़ैनुल आबिदीन के बारे में लिखा है कि:

"आपका इन्तेक़ाल मदीने में 95 हिजरी में हुआ। उस समय आपकी आयु 57 वर्ष थी और आप उस कुब्बे में दफ़्न हुए जिसमें अब्बास और आपके चचा हसन^अ० दफ़्न थे फिर आपके पुत्र मुहम्मद बाक़र^अ० और उनके पुत्र जाफ़रे सादिक़^अ० दफ़्न हुए।"

और इब्ने ख़ल्लिक़ान ने आपके बारे में लिखा है कि:

"आपक इन्तेक़ाल 94 हिजरी में हुआ और आप अपने चचा इमाम हसन^अ० के मक़बरे में उस कुब्बे में दफ़्न हुए जिसमें अब्बास की क़ब्र थी।"

इसी प्रकार इमाम मुहम्मद बाक़र के हाल में लिखा है। इससे पता चलता है कि पहली शताब्दी के अन्त में अब्बास^अ० की क़ब्र पर कुब्बा था।

इसके बाद ये कहना कि ये बिदअत (धर्म में नया करना) ताबई लोगों के बाद जन्मा। वास्तव में बात की सच्चाई से अनजान होना या अनजान बनना है बल्कि नज्द के क़ाज़ी अब्दुल्लाह बिन सुलेमान बिन वलहीद ने उस पर सोने पर सुहागा कर दिया कि अपने लेख में जो "उम्मुलकुरा" के अंक दिनांक 4 जमादुस्सानी 1345 हिजरी (शुक्रवार) में प्रकाषित हुआ लिखा है कि "खैरूलकुरून (अच्छी सदियों) में सुनने में नहीं आया कि ये बिदअत जन्मी हो बल्कि ये बिदअत पाँच शताब्दियों के बाद में जन्मी है।"

ये एक अजीब दावा है जिसे इतिहास बिल्कुल झूठा साबित करता है क्योंकि इतिहास से पाँच सदी के बहुत पहले से कुब्बों का होना आपके सामने आ चुका है और समहूदी ने 'वफ़ाउलवफ़ाअ' में लिखा है:

पैग़म्बर^स० की पाक क़ब्र की इमारत की दीवारें नीची थीं अब्दुल्लाह बिन जुबैर ने बड़ी मज़बूती से उन्हें ऊँचा करा दिया फिर अबुल बखतरी ने जो हारून रशीद की तरफ से मदीने का गवर्नर था 193 हिजरी में उस हुजरे (कोष्ट) की छत बनवायी। फिर मुतवक्किल ने हरमैन के गवर्नर को हुक्म दिया कि वह उस हुजरे को संगेमरमर से मज़बूत बनवा दे।

और इब्ने ख़ल्लिकान ने इमाम मूसा काज़िम अलैहिस्सलाम के हालात में ख़तीब बग़दादी की बात लिखी है जो सन 392 हिजरी में पैदा हुए है कि:

"मूसा काज़िम शौनीज़िया याने कुरैश की क़ब्रों के बीच कुब्बे से बाहर दफ़्न हुए और उनकी क़ब्र वहाँ मशहूर है और लोगों की ज़ियारत की जगह है। और उस पर रौज़ा बना हुआ है और वहाँ कन्दीलें लगी हुई हैं और वहाँ तरह तरह के सामान हैं और बहुत फर्श आदि का सामान है।"

इसमें यह शब्द कि "कुब्बे के बाहर दफ़्न हुए" यह बताते हैं कि एक कुब्बा वहाँ आपके दफ़्न होने से पहले बना हुआ था और इमाम का देहान्त सन 183 हिजरी में हुआ था और उस समय कुरैश की क़ब्रों पर कुब्बा मौजूद था। और फिर

इमाम मूसा काज़िम का रौज़ा (समाधि) ख़तीब के समय से पहले बन चुका था तो इसे अधिक से अधिक चौथी शताब्दी हिजरी के बीच में मानना पड़ेगा।

और जमालुद्दीन बिन ऐनिया ने "उम्दतुल मतालिब" में लिखा है कि:

"हारून रशीद ने हज़रत अमीरूल मोमिनीन अली इब्ने अबीतालिब अलैहिस्सलाम की क़ब्र पर गुम्बद (कलस/कुब्बा) का निर्माण कराया था।"

और यही बात 'हबीबुस्सियर', और 'कामिल' (इब्ने असीर) आदि में है और हुसैन बिन हज्जाज कवि जिनका देहान्त 327 हिजरी में हुआ उनके एक क़सीदे (प्रशंसा–काव्य) की एक पंक्ति इस प्रकार है: "ऐ नजफ़ में चमकते हुए कुब्बे (गुम्बद) वाले, जो आपकी ज़ियारत करे, वह शिफ़ा (रोग से अच्छा होना) मांगे शिफा पाएगा" और इब्ने ख़ल्लिकान ने अबू तम्माम हबीब इब्ने औस ताई (कवि) के हालात में लिखा है कि: "उनकी वफ़ात 230 हिजरी में हुई और उनकी क़ब्र पर नहशल बिन हमीद तूसी ने कुब्बा बनवाया।"

इसी तरह बुराना बिन्ते सहल के कुब्बा का बयान किया है जिनका देहान्त 271 हि0 में हुआ है।

इसी तरह अज़ुदुददौला देलमी के हाल में लिखा जिनका देहान्त भी 271 में हुआ है कि : ''वह पहले अपने झार में दफ़्न हुए फ़िर इमामे मूसा काज़िम[अ0] के हरम में कर दिये गये जो कुरैश के मक़बरों में है।''

इब्ने वकीअ शायर के हाल में लिखा है जिनका देहान्त 393 हिजरी में हुआ कि:

"वह बड़े क़ब्रिस्तान में दफ़्न हुए उस गुम्बद के नीचे जिसका निर्माण वहाँ उनके लिए हुआ था"

और उस्मान बिन मद्दूख शाफ़ई ने अपनी किताब "अल अदलु शाहिद फ़ी तहक़ीक़िल मशाहिद" में सय्यद इब्राहीम हुसैन की क़ब्र के बारे में लिखा है कि:

"यह रौज़ा (समाधि) क़ाहिरा से बाहर ख़न्दक़ (खाई) के पास है और उसके और मंजिया के बीच में और मस्जिद तब्रुल अख़्शीदी के नाम से प्रसिद्ध है इसलिए कि उन्होंने उसे सैयद इब्राहीम की क़ब्र पर बनवाया है। फिर लिखा है कि तब्रुल अख़्शीदी का देहान्त 360 हिजरी में हुआ।"

'रौज़तुस्सफ़ा' से पता चलता है कि मामून अब्बासी ख़लीफ़ा ने अपने बाप हारून रशीद की क़ब्र पर गुम्बद बनवाया और यह 203 हिजरी से पहले की बात है इसलिए इमाम रिज़ा अलैहिस्सलाम के हाल में अबुस्सलत हरवी की रिवायत लिखी है, उनका बयान है कि:

"मैं एक दिन इमाम रिज़ा[अ0] के पास था। आपने फरमाया उस गुम्बद की ओर जाओ जिसमें हारून रशीद की क़ब्र है और थोड़ी सी मिट्टी वहाँ की ले आओ, उनका बयान है कि मैं गया और ले आया तो आपने उसे सूंघा फिर फेंक दिया। फिर कहा कि बहुत जल्दी वह समय आने वाला है कि मेरे लिए वहीं क़ब्र खोदी जाए।"

सब को मालूम है कि यह ख़लीफ़ा मामून स्वयं एक ज्ञान वाला आदमी था जैसा कि सुयूती की तारीखुल खुलफा में है कि मामून न्याय का प्रतिबद्ध फ़िक़्ह (ईस्लाम धर्म विधि शात्र) में निपुण और बड़े उलमा में उसकी गिनती थी। फिर दूसरे उलमा भी उस समय बहुत संख्या में मौजूद थे जिनमें इमाम शाफ़ई, अहमद बिन हम्बल और सुफ़ियान बिन ऐनिया ऐसे लोग थे मगर किसी ने भी गुम्बद के निर्माण का विरोध नहीं किया।

इस संक्षिप्त किताब में इतने सबूतों को लिखना पर्याप्त है। जो व्यक्ति सूबूत ढूढ़ना चाहे उसे बहुत अधिक मिलेंगे।

इजमाअ एकमत

यहाँ हम अहले सुन्नत के अनुसार "इजमाअ" शब्द को देखेंगे। अहले सुन्नत के यहाँ इजमाअ शब्द का अर्थ मुसलमानों की एक बड़े संसमूह का एकराय होना। मुसलमानों का जनमत क़ब्रों के निर्माण के सामर्थन, इमारतों के बाकी रखने और उनके आदर पर एक है। इसका सुबूत उससे मिलता है जिसे हाफ़िज़ जलालुद्दीन सुयूती ने

"तारीखुल खुलफ़ा" में लिखा है कि जब मुतवक्किल ने इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम के रौज़े को गिराया और उससे यह भी खुलता है कि तीसरी सदी हि0 में आप की क़ब्र पर भवन था और उसके इधर उधर और भी भवन थे जिन्हें गिराकर मुतवक्किल ने खेती कर दी और लोगों को ज़ियारत से रोक दिया और मुतवक्किल का नासिबी अर्थात अहलेबैत का शत्रु होना आम तौर पर मशहूर था तो मुसलमानों को इससे बहुत दुःख हुआ और बग़दाद के नागरिकों ने उसके ख़िलाफ़ नारे दीवारों पर लिख दिए और शायरों ने उस की निन्दा में शेर कहे। इससे ज़ाहिर है कि आम मुसलमान जिन्हें जमहूरे उम्मत (समुदाय के जनगण) कहना चाहिए इस इमारत के आदर पर एकमत थे।

अधिकतर उलमा ने इसे जायज़ माना है। "दुर्रूल मुख़्तार" के लेखक ने लिखा हैः
"निर्माण करने में मतभेद है हमारा अनपाया मत है कि इसमें कोई बुराई नहीं है।"
और मुल्ला क़ारी ने मिश्कात की व्याख्या में लिखा है किः
"पहले के नेक लोगों ने इसे अच्छा समझा है कि बड़े लोगों (पीर आदि) और मशहूर उलमा और औलिया की क़ब्रों पर इमारत का निर्माण किया जाए ताकि लोग उनकी ज़ियारत को जाएं और इमारतों में ठहर कर आराम करें।" और ऐसा ही मुहदिदस (हदीसों के बयान करने वाले विशेषज्ञ) मुहम्मद ताहिर फ़तनी ने मजमअुल बिहार में लिखा और दूसरे उलमा के कथन इसी के अनुसार हैं।

इस तरह मदीने के उलमा का यह कथन ग़लत हो जाता है कि क़ब्रों पर इमारत बनाना इजमाअ के अनुसार मना है। इस लिए वह हदीसें तो इस से रोकती है सही सनद (काम) की नहीं मगर मालूम होगया कि इजमा और उन हदीसों का दावा बिल्कुल निराधार है। और उनका यह कथन कि अधिकतर उलमा ने इन इमारतों के गिराने का फ़तवा दिया है, कि इन इमारतों का गिराना वाजिब (अनिवार्य) है हज़रत अली[अ0] की हदीस के आधार पर कि आपने अबुल हैयाज से यूँ कहा। हम जहाँ तक नज़र डालते हैं हमें यह उलमा नज़र नहीं आते। मालूम होता है कि ये उलमा केवल नज्द की धरती से सम्बन्ध रखते हैं। बाकी हर समय के उलमा तो सब तरह सदियों में इन भवनों को देखते रहे और कभी उनको गिराने का फ़तवा नहीं दिया। सिवाए इब्ने तैमिया और इब्ने क़य्यूम के जो अधिकतर उलमा के विरोध का निशाना रहे हैं और हर ज़माने में अपमानित हुए। इसके विपरीत सारे उलमा की चुप्पी और समर्थन के साथ सब मुसलमान हन इमारतों के पुननिर्माण और मज़बूत ता की ओर ध्यान देते रहें।

अबुल हय्याज वाली हदीस (जिसमें हज़रत अली अलैहिस्सलाम ने क़ब्रों को समतल करने भेजा) जिससे ये लोग दलील लाते हैं वह ग़लत है और कई कारणों से :

पहला यह कि ये हदीस काफ़िरों और मुश्रिकों की क़ब्रों के सम्बन्ध में है जिनके अस्तित्व से कोई फायदा नहीं बल्कि हानि होने की आशंका है। परन्तु नबियों और नेक लोगों की क़ब्रों के बाक़ी रहने में दीन का फायदा है। जो खुदा के चहीते है जैसे इन कब्रों की ज़ियारत जिसका हुक्म भी हुआ है कि कब्रों की जाकर ज़ियारत करो कि उनसे आखिरत (प्रलय) की याद ताज़ा है और फ़िर उनके कारनामों की याद ताजा होती है जो उन लोगों ने धर्म के प्रचार प्रसार और खुदा के रास्ते में किये थे और इस हदीस का सम्बन्ध काफ़िरों की कब्रों से होने की बात खुद हदीस में है, इसलिए कि एक साथ दो चीज़ों के मिटा देने का हुक्म हुआ एक मूर्तियाँ और दूसरे ऊँची कब्रें और साफ़ है कि ये मूर्तियाँ मुसलमानों की बनायी नहीं थी बल्कि मुश्रिकों की रखी थी तो ये क़ब्रें भी उन्हीं की होंगी और यह बुद्धि समझ लगाने से भी सामने आता है क्यों कि उस समय मुसलमानों की आर्थिक स्थिति ऐसी कहाँ थी कि वे क़ब्रों पर इमारतें बनाते। और सहाबी आप[स0] के साथ के श्रेय के हिसाब से सब बराबर की स्थिति रखते थे

अतः उनमें कुछ की ऐसी विशिष्टता नहीं थी कि उनकी क़ब्रों पर भवन बनाये जाते इसलिए वह क़ब्रें जिनके मिटाने का हुक्म हुआ था मुसलमानों की क़ब्रें बिल्कुल नहीं थीं वरना उनपर पिछले खलीफ़ाओं के समय में इमारतें क्यों बनतीं जो अब जनाब अमीर[अ०] को उनके गिराने की ज़रूरत होती। फ़िर रसूल[स०] के हुक्म का आप ने संदर्भ दिया कि मुझे उस अहम काम के लिए भेजा था तो रसूल[स०] के समय में मोमिनों की क़ब्रों पर यह इमारतें क्योंकर बन गयी और स्वयं हजरत[स०] को निर्माण के समय खबर न हुई जो बाद में उनके गिराने के लिए हज़रत अली[अ०] को भेजा।

अब यह कि वो पहले के नबियों की क़ब्रें हो ऐसा भी नहीं था। एक तो वो मदीना और उसके आसपास न थीं बल्कि शाम व फ़िलस्तीन वग़ैरह में थीं या इराक़ में थीं। और अगर उन क़ब्रों को गिराने को भेजा था तो वह बाद में बाक़ी क्यों रही जो चारों ओर फैली हैं जैसे जनाबे दानियाल पैग़म्बर की क़ब्र शूस्तर में और जनाबे हूद[अ०] सालिह[अ०] और जनाब यूनुस[अ०] ज़ुलकफ़्ल और युशा' की क़ब्रें नजफ़ में और बाबील की भूमि पर और बहुत से नबियों की क़ब्रें शाम और फ़िलस्तीन में।

और सुनिएः

रसूलल्लाह[स०] की माँ जनाबे आमिना बिन्ते वहब का देहान्त कब हुआ था? जब हज़रत की आयु 6 वर्श थी और चालीस वर्ष के होने पर अपने पैग़म्बर होने का ऐलान किया, तो चौतीस वर्ष हुए, फिर तेरह वर्षो बाद हिजरत हुई, अब सैतालीस वर्ष हो गये, फिर 8 हिजरी में मक्का की विजय हुई यह 55 वर्ष हो गए, अर्थात् आधी सदी हो गई तब तक जनाबे आमिना की क़ब्र स्पष्ट रूप से दिखती थी। मगर नबी ने उसके गिराए जाने का आदेश नहीं दिया बल्कि अल्लाह से उस क़ब्र की ज़ियारत के लिए आज्ञा चाही और फिर आज्ञा मिलने पर आप स्वयं वहाँ गए। क़ब्र के सरहाने बैठे और अपने सर को इस प्रकार हिला रहे थे जैसे बातें कर रहे हों फिर आप रोऐ जिस पर सारे मुसलमान रोने लगे। इसका ज़िक्र सहीह मुस्लिम में भी है।

इसका भी बयान पहले हो चुका कि नबी[स०] के बेटे इब्राहीम की क़ब्र भी घर के अन्दर थी। और उसे स्वयं आप[अ०] ने बनवाई थी यह घर भी आप के काल में और उसके बाद बराबर बाकी रहा। स्वयं पैग़म्बर की पाक क़ब्र एक इमारत में थी जिसे खुद हज़रत अली[स०] और दूसरे अहलेबैत और सहाबियों ने बनवाया।

यह इमारत भी बराबर बाक़ी रही और लोगों ने इसे और मज़बूत ही किया और उसकी शान बढ़ाई जाती रही। इसके बाद नबी[स०] के चचा अब्बास की क़ब्र पर भी गुम्बद का निर्माण इसी काल में हुआ जो जनाब अमीर[अ०] के शासन काल से पहले था और यह कुब्बा इसके पहले और इसके बाद बराबर रहा।

इन सबसे ज़ाहिर है कि अगर पैग़म्बर का कोई हुक्म था तो वह बस और बस काफ़िरों की क़ब्रों के लिए था मोमिनों की क़ब्रों के लिए नहीं। और खुदा के करीबी और नेक लोगों की क़ब्रों में अलग से खास होना इस्लाम वालों के ध्यान का केन्द्र में था। इसी से हाफ़िज़ इब्ने हजर की 'इसाबा' के मुहम्मद बिन शरजील के हाल में स्वयं उनका बयान हैः

"मैने साद बिन मआज़ की क़ब्र की थोड़ी सी मिट्टी मुटठी में ले कर सूँघी तो इसमें से कस्तूरी की खुशबू लगी।"

अब जब कि गिराये जाने का हुक्म, अगर उस हदीस का अभिप्राय यही हो काफ़िरों और मुश्रिकों की क़ब्रों के सम्बन्ध में था तो उससे मज़हब के इमामों और नेक लोगों की क़ब्रों के गिराने पर तर्क करना बिल्कुल गलत है।

